[दोहा ४१]

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

[दोहा ४२]

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा।
जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए।
समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
आवा मिलन दसानन भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा।
कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥

जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी।
मम पन सरनागत भयहारी॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना।
सरनागत बच्छल भगवाना॥

[दोहा ४३]

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते।
लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

[दोहा ४४]

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥

सादर तेहि आगें करि बानर।
चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता।
नयनानंद दान के दाता॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी।
रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन।
स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥
सिंघ कंध आयत उर सोहा।
आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता।
मन धरि धीर कही मृदु बाता॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

[दोहा ४५]

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

अस कहि करत दंडवत देखा।
तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा।
भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।
बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥
खल मंडली बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती।
अति नय निपुन न भाव अनीती॥
बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया।
जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥

[दोहा ४६]

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना॥

जब लगि उर न बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा॥
ममता तरुन तमी अँधिआरी।
राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं।
जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे।
देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला।
ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ।
सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा।
तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥

[दोहा ४७]

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही।
आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

[दोहा ४८]

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें।
तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा।
सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी।
नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा।
हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी।
प्रनतपाल उर अंतरजामी॥

उर कछु प्रथम बासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी।
देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा।
मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं।
मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

[दोहा ४९ (क), (ख)]

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना।
ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥